सूतक पातक विचार

संस्कार संहिता से साभार – पंडित सनत कुमार विनोद कुमार रजवास,

ज्ञान पीठ से २०१६ में प्रकाशित

संस्कार संस्कृति के परिचायक ही नहीं, उसके नियामक भी होते हैं | संस्कार नहीं, तो संस्कृति नहीं | बात इतनी ही नहीं, संस्कृति संस्कार सम्यक नहीं तो संस्कृति भी सम्यक नहीं, बल्कि संस्कार यदि बुरे पड जाएँ, तो निश्चय मानिए कि संस्कृति भी अच्छी न हो पाएगी, इसलिए संस्कारों की सजगता समृद्ध शाली संस्कृतिके लिए बहुत आवश्यक है, और जब संस्कार समृद्ध होंगें तो निश्चय मानिए कि संस्कृति भी समृद्ध होगी | कुछ लोग कहते हैं की संस्कार बंधन बनते हैं , पर मुझे लगता है कि संस्कार बंधन नहीं होते, संस्कार तो परंपरा के पोषक ओते हैं | कई बार तो ऐसा लगता है कि संस्कार से जीवन बनता है | बनता ही नहीं वह अपने चरम लक्ष्य की पूर्ति तक पहुचता है, इसलिए मुझे तो लगता है कि संस्कार मानवीय जीवन की आधार भूमि है | संस्कार सजग और सम्यक हों, तो निश्चय है कि जीवन की गति भी अपने चरम लक्ष्य के प्रति सजग और सम्यक होगी, बल्कि उसे पाकर ही रहेगी |

- आ. बाल ब्रह्मचारी श्री सुमतप्रकाशजी

जन्म समय का अशौच सूतक और मृत्यु समय का अशौच पातक कहलाता है |

व्यभिचारी को सदा सूतक है |

जन्म समय पीढ़ी नीचे-बालक से एवं मरण समय ऊपर से गिनी जाती है | दादाजी से पहली पीढ़ी गिनना चाहिए यदि और भी बड़ा कुल हो तो दादाजी के पिताजी से गिनना चाहिए |

विधि – देव शास्त्र गुरु का स्पर्श अभिषेक द्रव्य पुजा आरती गंधोकि पूजन के वर्तन, साधुओं की वैयावृत्ति आहार दान एवं गर्भगृह में प्रवेश वर्जित है | इसमें भाव पूजा करने स्वाध्याय सुनने का निषेध नहीं है साधु दर्शन भी कर सकते हैं किसी से लेकर गंधोकि भी लगा सकते है |

गर्भवती महिला ५ वे माह से कष्ट हो तो महाकार्य न करें जैसे आहारदान, बड़े विधान आदि | स्वाध्याय पूजा प्रतिदिन कर सकते हैं |

आत्म हत्या/ हत्या (गर्भपात कराने पर भी) करने वाले को उसकी रसोई में भोजन करने वाले को ६ माह का सूतक लगता है परन्तु अलग व्यापार भोजन करने वाले भाई को मात्र १२ दिन का पातक लगेगा |

जन्म मरण का तीसरी पीढ़ी तक १० एवं १२ दिन का सूतक-पातक क्रमशः लगता है |

चौथी पीढ़ी को १० दिन पांचवी में ६ दिन छठी ४ दिन ७ वी पीढ़ी में ३ दिन ८ वी पीढ़ी में १ दिन का नवी पीढ़ी में ६ घंटा १० वी पीढ़ी स्नान मात्र |

पुत्री या रिश्तेदारों को सन्तान या मरण अपने घर में होने पर ३ दिन का सुतक पातक

गर्भपात ४ माह तक जितने माह का गर्भ हो माता को उतने दिन का पातक घर बालों को नहीं इससे ऊपर ५ या अधिक मॉस का होने पर गर्भपात हो तो जितने माह का गर्भपात हो उतने दिन का माँ को एवं परिवार को १ दिन का पातक लगेगा |

मरे बालक के जन्म पर माँ को ४५ दिन परिवार को १० दिन का पातक

८ वर्ष तक के बालक का ३पीढ़ियों तक १० दिन का ८ वर्ष से बड़ा हो तो पूरा पातक पीढ़ी कर्म से लगेगा |

आज जो भी सूतक-पातक चलन में हैं उसका मुख्य आधार सोमसेन त्रिवर्णाचार या उस पर आधारित लिखित प्रकाशित साहित्य है | प्रथम

सहस्त्रावदी में ऐसा कोई ग्रन्थ नहीं पाया जाता है | १७ वी सदी में सोमसेन भट्टारक कृत उपरोक्त ग्रन्थ में ब्रह्मसूरि भ्रम नहीं कीजिए ये जैन हैं परन्तु मान्यता पूर्णतयः ब्राह्मण ही है | इनके कुल में गोविन्द भट्ट हुए जो समन्त भद्र स्वामी का देवागम स्त्रोत सुनकर जैन धर्म में दीक्षित हुए थे | उनके ग्रन्थ की नकल हैं | कुछ अन्य मतानुयायी ग्रंथों मारीचि आदि ऋषियों के उल्लेख भी है |

इसे गोपाल दास जि बरैया शास्त्री पाठ्यक्रम में पढाते थे परन्तु इस लेख को पढने के बाद हटा दिया |

यहाँ उस लेख के उछ अंश ही बताना चाहता हूँ |

सदा सूतक का अद्भुत लेख – जो नपुंसक हो, सदा रोगी रहे, कंजूस हो, रिणी हो, क्रियाहीन हो, मूर्ख हो, स्त्री के वशीभूत हो, पाखंडी पापी हो, जलाने पर हो उसका सूतक दूर होता है | उसे दाह क्रिया करने वाले को ३ दिन का सूतक लगता है |

छेद पिंड – प्रायश्चित्त ग्रन्थ ब्रह्मदेव सूरि – परदेश में, जल या अग्नि से मरने वाले को सूतक नहीं लगता | २३४

अंत में -२३७ पृ पर लिखते हैं सार रूप में सूतक पातक अपनी वर्तमान स्थिति में महज काल्पनिक है, उसका मानना न मानना समय की जरूरत,

लोक स्थिति अथवा अपनी परिस्थिति पर अवलंबित है लोक का वातावरण बदल जाने पर अथवा अपनी किसी ख़ास जरूरत के खड़े हो जाने पर उसमें यथेच्छ परिवर्तन ही नहीं किया जा सकता है बल्कि उसे साफ़ धता भी बतलाया जा सकता है, वास्तविक धर्म अथवा धार्मिक तत्वों के साथ उसका कोई ख़ास सम्बन्ध नहीं है , उसको उस रूप में मानते हुए भी पूजा दान तथा स्वाध्याय आदिक धर्म कृत्यों का अनुष्ठान किया जा सकता है | और उससे कोई अनिष्ट फल की आशंका/ सम्भावना नहीं हो सकती है |

आगे भरत चक्रवर्ती द्वारा आदिनाथ का पूजा उत्सव दिव्य ध्वनी सुनना इस का उदहारण दिया गया है | -आदिपुराण २४ वा पर्व | इसी में श्रावक की ५३ सम्यक क्रियाएं लिखी हैं उनमें सूतक पातक की कोई क्रिया नहीं लिखी है | पूजा करने से से तो अपवित्र दशा वाला भी पवित्र हो जता है |

भगवन जिनसेन ने अन्य लोगों द्वारा मानी सूतक को मिथ्या क्रियाएं कहीं है |-३९ वे पर्व का २४ व श्लोक इसके सिवाय प्राचीन साहित्य का जहाँ तक भी अनुशीलन किया जाता है उससे भी यही पता चलता है कि बहुत प्राचीन समय अथवा जैनियों के अभ्युदय काल में सूतक को कभी इतनी महत्ता प्राप्त नहीं थी और न वह ऐसी विडम्बना को ही लिए हुए थे जैसी कि भट्टारक जि के इस ग्रन्थ में पाई जाती है | भट्टारक जि ने किसी देश

काल अथवा सम्प्रदाय में प्रचलित सूतक के नियमों का जो बेढंगा संग्रह करके उसे शास्त्र का रूप दिया है और सब जैनियो पर उसके अनुकूल आचरण की जिम्मेदारी का भार लादा है वह किसी तरह भी समुचित प्रतीत नहीं होता | जैनियो को इस विषय में अपनी बुद्धि से काम लेना चाहिए | और केबल प्रवाह में हि नहि बहना चाहिए | उन्हें जैन दृष्टी से सूतक के तत्व को समझते हुए उसके किसी नियम उपनियम का पालन उस हद तक ही करना चाहिए जहाँ तक कि लोक व्यवहार में ग्लानी मिटने अथवा शुचिता सम्पादन करने में उसका सम्बन्ध हो | और अपने व्रत एवं सम्यक्त में दोष न लगे | धर्म पर उसका आतंक न जमना चाहिए | किन्तु भरतजी की तरह धर्माचरण करते रहना चाहिए | और यदि खिन का वातावरण अज्ञान अथवा संसर्ग दोष से या ऐसे ग्रंथों के उपदेश से दूषित हो रहा हो, सूतक पातक की पद्धति बिगड़ी हो, तो युक्ति पूर्वक सुधरने का यत्न करना चाहिए |

मृतक संस्कार सम्बन्धी दूषण भी दूर किये जाना चाहिए |

सूतक पातक मानसिक क्षोभ या ग्लानी को दूर करने के लिए होते हैं | घर में डेड बॉडी या जन्म समय की अशुचिता से ग्लानी होना एवं क्षोभ होना स्वाभाविक ही है | ब्रह्मचारी गण , विद्वान , साधुजन घर से परे हों तो भेद विज्ञानी हों , आत्म ग्यानी हो विरक्त हों तो उन्हें सूतक नहीं लगता है |

मोह-गाफिल अवस्था में स्वाध्याय पूजा ध्यान में मन नहीं लगता है अतः सूतक विधान है यह राजमार्ग नहीं बनाया जा सकता है कि कितने दिन | परन्तु चरणानुयोग में तो समग्र को ध्यान में रखकर ही नियम कहे जाते हैं | अतः प्रत्येक व्यक्ति को अपने ज्ञान ध्यान वैराग्य को ध्यान में रखकर सूतक पातक का पालन करना चाहिए | ध्यान या भेद विज्ञान को इनकार नहीं है यह तो सदा किया जा सकता है | लेटकर बैठकर , लेट्रिंग बाथरूम में सर्वत्र किया जा सकता है अतः उसे करणा चाहिए | छोटे काम छुडाएं है बड़े नहीं | छोटे काम में मन नहीं लगेगा रोयेंगें तो जिनवाणी या जिनदेव की असादना होगी जिससे पाप बंध होगा अतः इन क्रियाओं पर रोक है |

शादी के समय वर वधु को, पंच कल्याणक विधान पूजा में पहले से शामिल होने से सूतक नहीं लगता है | अतः इस बीच खबर भी नहीं दी जाती है | बाहर छात्रावास में बच्चे बच्चियां धार्मिक अध्ययन कर रहे हों तो उन्हें सूतक की जानकारी नहीं देना चाहिए | शादी के समय कन्या को MC हो गई हो तो स्नान करके पूजा विवाह कर सकती है | उस ही प्रकार स्नान करके धर्म के प्रश्न पत्र भी दे सकती है | हां रोग हो प्रति घंटे आध घंटे में बाधा आती हो तो परीक्षा भी न दें |

क्या सूतक पातक में सुधार होने चाहिए ?

- आ. बाल ब्रह्मचारी श्री सुमतप्रकाशजी

मेरे विचार से देश काल के अनुसार सुधार अवश्य होना चाहिए / सारे विश्व में यही एकमात्र नियम है जिसका पालन करने को विदेश से ही फोन आता है कि कितने दिन शास्त्र नहीं पढना है मन्दिर नहीं जाना है नमोकार मन्त्र भी नहीं पढ़ें क्या ?आदि-२ /

पहले लोगों को जिन मन्दिर देव शास्त्र गुरु ही प्राण सम लगते थे तो उन्हें गृहस्थी के दंड स्वरूप एवं भेद विज्ञान ध्यान का अवसर देने के लिए विरक्त होने के लिए सूतक पातक अवसर होता था / घर की व्यस्थाएं बदल जाती थी / माँ-स्त्री की विशिष्ट सेवा करना होती थी अतः अवकाश मन्दिर आदि से लेना ही पड़ता था / अतः सूतक आदि ठीक हैं / मन्दिर में इस तरह की वार्ता या विलाप आदि से माहोल न बिगड़े इस लिए वहां से अवकाश देना ठीक लगता है / परन्तु आज तो लोग मंदिर ही नहीं जाते हैं / तब तो वे सदा सुतक का ही पालन कर रहे हैं /

आज आवश्यकता है कि निम्न प्रकार सूतक पातक का पालन कराया जाए /

१- जन्म होने पर मन्दिर में विशेष पूजा विधान कराके ही बालक का श्रावक संस्कार करना चाहिए / ४५ दिन तक सभी को (जच्चा-बच्चा को छोड़कर) पूजन दर्शन करना चाहिए / स्वाध्याय करना चाहिए / हां बच्चे के

अच्छे संस्कार हेतु घर में TV/ समाचार पत्र / रेडिओ / मोबाइल से दूर रहना चाहिए / रोजाना भजनों का कार्यक्रम होना चाहिए / विद्वानों के उपदेश कराए जा सकते हैं / घर में प्रसव न होने से यह सब कार्यक्रम कराए जा सकते हैं / बाजार के भोजन का त्याग हो / गाली गलोच, क्रोधादि का व्यवहार कोई न करे / सबको जच्चा बच्चा को प्रेम – आदर देना चाहिए / बच्चा बच्ची समान समझे जाएँ / बच्ची के नाम पर मुंह न तो बिगाड़े और न हो उसकी उपेक्षा करे / जच्चा का चित्त प्रसन्न कर ते रहना चाहिए /

२- मरण प्रसंग में भी उपरोक्त के अलावा निम्न विचारणा अवश्य करना चाहिए – मरण अनिवार्य है / वह जीव हमारे मोह का त्याग करके अब मोक्ष से पहले कभी न मिले / ऐसी भावना करनी चाहिए / कोई कुरीति का पालन न करे / देह के पैर छूने, तेर्वी कराना आदि न करना / सर न मुन्डाबें, सादा भोजन करें / रोयें नहीं / उनकी स्मृति में शिविर लगावें / विधान कराबें / वर्तन बांटने जैसे कार्य कभी न करें / हां जैन धर्म का सुबोध साहित्य भेंट करें शिबिर लगावें / विधान करावें /

३- दूरवर्ती लोगों को सूतक की आवश्यकता नहीं है / मात्र पूजा स्वाध्याय संयम का पालन तो उन्हें अवश्य करणा चाहिए /

- आ. बाल ब्रह्मचारी श्री सुमतप्रकाशजी

४- MC का पालन अवश्य करें / परन्तु रोग के कारण ऐसा हो रहा है तो स्नान मात्र से शुद्धि मानी जायेगी /

वर्तमान त्रिलोक भूषण मुनिराज कृत २०१२ की कृति दिग.जैन धर्म में आर्या आर्यिका एवं सुतक पातक से साभार –

१- पंडित राजमल कृत लाटी संहिता ५/२५१- श्रावकों को अपने भोजन की शुद्धि बनाये रखने के लिए जैन शासन में कहे अनुसार सूतक पातक का भी त्याग कर देना चाहिए / इसका अर्थ है अन्य मत से आया हुआ सूतक पातक का त्याग कर देना चाहिए /

२- हमारे यहाँ मृत्यु तो महोत्सव है पाप नहीं / फिर पातक क्यों ?

३- त्रिलोकसार ९२४- पंडित टोडरमल- मूल अर्थ के आलावा भिन्न अर्थ – भूषण जी कृत – जो खोटे भाव करता है, अशुद्धि हो, यानी बिना स्नान , बिना धुले और किसी के छुए हुए कपड़ों से, शौच एवं लघु शंका गंदगी पर पैर पड़ने से शुद्धि आदि का ध्यान न रखने वालों से हैं / पुष्पवती एवं सूतक के कारण अन्य पारिवारिक सदस्य अशुद्ध नहीं होते हैं /

४- जाती शंकर की कल्पना भी मिथ्या है कारण आदिपुराण अनुसार ब्राह्मण किसी भी वर्ण में विवाह कर सकता है क्षत्रिय ब्राह्मण छोड़कर

वैश्य ब्राहमण एवं विषय को छोड़कर सूद्र मात्र सूद्र से ही विवाह कर सकता है |

५-भरत चक्री ने म्लेच्छ कन्याओं से विवाह किया , पुत्र जन्म होने पर भारत भी पूजा को गये | प्रथानुयोग में सूतक पातक का विधान नहीं दीखता है |

जातिसनकर कहाँ रहा | सूतक निर्णय भाष्य श्री सोम्सेन सूरी श्वेता.है

भगवती आराधना ५८२ के अनुसार प्रसूता स्त्री को ३० दिन हुए थे उससे आहार लेने का प्राय्श्चित माँगा है |

एक आर्यिका के अशुद्ध होने से सारा संघ अशुद्ध नहीं माना जा सकता उसी प्रकार सभी की अशुद्धि नहीं मानना चाहिए |

उपर्युक्त लेख का आधार **ग्रन्थ-परीक्षा** की फोटो यहाँ से देखें :

है!!''[६२] यह सब व्यवस्था भी कैसी विलक्षण है, इसे पाठक स्वयं समझ सकते हैं। इसमें और सब बातें तो हैं ही परन्तु 'मुक्ति' इसके द्वारा अच्छी सस्ती बना दी गई है! मुक्ति के इच्छुकों को चाहिए कि वे इसे अच्छी तरह से नोट कर लेवें!!

सूतक की विडम्बना

(२०) जन्म-मरण के समय अशुचिता का कुछ सम्बन्ध होने से लोक में जननाशौच तथा मरणाशौच (सूतक पातक) की कल्पना की गई है और इन दोनों को शास्त्रीय भाषा में एक नाम से 'सूतक' कहते हैं। स्त्रियों का रजस्वलाशौच भी इसी के अन्तर्गत है। इस सूतक के मूल में लोक व्यवहार की शुद्धि का जो तत्त्व अथवा जो उद्देश्य जिस हद तक सन्निहित था, भट्टारकजी के इस ग्रन्थ में उसकी बहुत कुछ मिट्टी पलीद पाई जाती है। वह कितने ही अंशों में लक्ष्यभ्रष्ट होकर अपनी सीमा से निकल गया है–कहीं ऊपर चढ़ा दिया गया तो कहीं नीचे गिरा दिया गया–उसकी कोई एक स्थिर तथा निर्दोष नीति नहीं और इससे सूतक को एक अच्छी खासी विडम्बना का रूप प्राप्त हो गया है। इसी विडम्बना का कुछ दिग्दर्शन कराने के लिये पाठकों के सामने उसके दो चार नमूने रखे जाते हैं–

(क) वर्णक्रम से सूतक (जननाशौच) की मर्यादा का विधान करते हुए, आठवें अध्याय में, ब्राह्मणों के लिये १०, क्षत्रियों के लिये १२, और वैश्यों के लिये १४ दिन की मर्यादा बतलाई गई है। परन्तु तेरहवें अध्याय में क्षत्रियों तथा शूद्रों को छोड़कर, जिनके लिये क्रमशः १२ तथा १५ दिन की मर्यादा दी है, औरों के लिए १० दिन की मर्यादा का उल्लेख किया है और इस तरह पर ब्राह्मण वैश्य दोनों ही के लिये १० दिन की मर्यादा बतलाई गई है। इसके सिवाय एक श्लोक में वर्णों की मर्यादा-विषयक पारस्परिक अपेक्षा (निस्बत) का नियम भी दिया है और उसमें बतलाया है कि जहाँ ब्राह्मणों के लिये तीन दिन का सूतक, वहाँ वैश्यों के लिये चार दिन का, क्षत्रियों के लिये पाँच दिन का और शूद्रों के लिये आठ दिन का समझना चाहिए। यथा–

प्रसूतेर्दशमे चाह्नि द्वादशे वा चतुर्दशे।
सूतकाशौचशुद्धिः स्याद्विप्रादीनां यथाक्रमम् ॥८-१०५॥

प्रसूतौ चैव निर्दोषं दशाहं सूतकं भवेत्।
क्षत्रस्य द्वादशाहं सच्छूद्रस्य पक्षमात्रकम् ॥१३-४६॥

---

६२. यथा– अंगुष्ठः पुष्टिदः प्रोक्तो यशसे मध्यमा (मध्यमायुष्करी) भवेत्। अनामिका श्रियं (ऽर्थदा) दद्यात् (नित्यं) मुक्तिं दद्यात् (मुक्तिदा च) प्रदेशिनी॥८२॥ यह पद्य, ब्रैकिटों में दिये हुए पाठभेद के साथ, हिन्दुओं के ब्रह्मपुराण में पाया जाता है (श. क.) और सम्भवतः वहीं से लिया गया जान पड़ता है।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

- आ. बाल ब्रह्मचारी श्री सुमतप्रकाशजी

[६३]त्रिदिनं यत्र विप्राणां वैश्यानां स्याच्चतुर्दिनम्।
क्षत्रियाणां पंचदिनं शूद्राणां च दिनाष्टकम्॥४७॥

इन तीनों श्लोकों का कथन, एक विषय से सम्बन्ध रखते हुए भी, परस्पर में कितना विरुद्ध है इसे बतलाने की जरूरत नहीं, और यह तो स्पष्ट ही है कि तीसरे श्लोक में दिये हुए अपेक्षा नियम का पहले दो श्लोकों में कोई पालन नहीं किया गया। उसके अनुसार ब्राह्मणों के लिये यदि दस दिन का सूतक था तो वैश्यों के लिये प्रायः १३ दिन का, क्षत्रियों के लिये १६ दिन का और शूद्रों के लिये २६ दिन का सूतक विधान होना चाहिए था। परन्तु वैसा नहीं किया गया। इससे सूतक विषयक मर्यादा की अच्छी खासी विडम्बना पाई जाती है, और वह पूर्वाचार्यों के कथन के भी विरुद्ध है, क्योंकि प्रायश्चित्त समुच्चय और छेदशास्त्रादि ग्रन्थों में क्षत्रिय के लिए ५ दिन की, ब्राह्मणों के लिये १० दिन की, वैश्यों के लिये १२ दिन की और शूद्रों के लिये १५ दिन की सूतक व्यवस्था की गई है और उसमें जन्म तथा मरण के सूतक का कोई अलग भेद न होने से वह, आम तौर पर, दोनों के ही लिये समान जान पड़ती है। यथा–

क्षत्रब्राह्मणविट्शूद्रा दिनैः शुद्ध्यन्ति पंचभिः।
दशद्वादशभिः पक्षाद्यथासंख्यप्रयोगतः॥१५३॥ प्रायश्चित्तस.,चूलिका।
पण दस वारस णियमा पण्णरसेहिं तत्थ दिवसेहिं।
खत्तियवंभणवइसा सुद्दाइ कमेण सुज्झंति॥८७॥ छेदशास्त्र।

(ख) आठवें अध्याय में भट्टारकजी लिखते हैं कि ''पुत्र पैदा होने पर पिता को चाहिए कि वह पूजा की सामग्री तथा मंगल कलश को लेकर गाजे बाजे के साथ श्री जिनमंदिर में जावे और वहाँ बच्चे की नाल कटने तक प्रतिदिन पूजा के लिये ब्राह्मणों की योजना करे तथा दान से सम्पूर्ण भट्ट-भिक्षुकादिकों को तृप्त करे''। और फिर तेरहवें अध्याय में यह व्यवस्था करते हैं कि ''नाल कटने तक और सबको तो सूतक लगता है परन्तु पिता और भाई को नहीं लगता। इसी से दान देते हैं और उस दान को लेने वाले अपवित्र नहीं होते हैं। यदि उन्हें भी उसी वक्त से सूतकी मान लिया जाये तो दान ही नहीं बन सकता''। यथा–

''पुत्रे जाते पिता तस्य कुर्यादाचमनं मुदा।
प्राणायामं विधायोश्चैराचमं पुनराचरेत्॥१३॥

---

६३. इस श्लोक का अर्थ देने के बाद सोनीजी ने जो भावार्थ दिया है वह उनका निजी कल्पित जान पड़ता है, मूल से उसका कुछ सम्बन्ध नहीं है। मूल के अनुसार इस श्लोक का सम्बन्ध आगे पीछे दोनों ओर के कथनों से है। आगे भी ६२वें श्लोक में जननाशौच की मर्यादा का उल्लेख किया गया है। उस पर भी इस श्लोक की व्यवस्था लगाने से वही विडम्बना खड़ी हो जाती है। इसी तरह ४६वें श्लोक के अनुवाद में जो उन्होंने लिखा है कि 'राजा के लिये सूतक नहीं' यह भी मूल से बाहर की चीज है!

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

पूजावस्तुनि चादाय मंगलं कलशं तथा।
महावाद्यस्य निर्घोषं व्रजेद्धर्मजिनालये॥९४॥
ततः प्रारभ्य सद्विप्रान् जिनालये नियोजयेत्।
प्रतिदिनं स पूजार्थं यावन्नालं प्रच्छेदयेत्॥९५॥
दानेन तर्पयेत् सर्वान् भट्टान् भिक्षुजनान् पिता।"
"जननेऽप्येवमेवाऽयं मात्रादीनां तु सूतकम्॥
तदानाऽयं पितुर्भ्रातुर्नाभिकर्तनतः पुरा॥६२॥
पिता दद्यात्तदा स्वर्णताम्बूलवसनादिकम्।
अशुचिनस्तु नैव स्युर्जनास्तत्र परिग्रहे॥६३॥
तदात्व एव दानस्यानुत्पत्तिर्भवेद्यदि।"

पाठकजन! देखा, सूतक की यह कैसी विडम्बना है!! घर में मल, दुर्गन्धि तथा रुधिर का प्रवाह बह जाये और उसके प्रभाव से कई कई पीढ़ी तक के कुटुम्बी जन भी अपवित्र हो जाये–उन्हें सूतक का पाप लग जाये परन्तु पिता और भाई जैसे निकट सम्बन्धी दोनों उस पाप से अछूते ही रहें!!! वे खुशी से पूजन की सामग्री लेकर मंदिर जा सकें और पूजनादिक धर्मकृत्यों का अनुष्ठान कर सकें परन्तु दूसरे कुटुम्बी जन नहीं!! और दो एक दिन के बाद जब यथारुचि नाल काट दी जाये तो वह पाप फिर उन्हें भी आ पिलवे– वे भी अपवित्र हो जायें– और तब से पूजनदानादि जैसे किसी भी अच्छे काम को करने के वे योग्य न रहें!!! इससे अधिक और क्या विडम्बना हो सकती है!!! मालूम नहीं भट्टारकजी ने जैनधर्म के कौनसे गूढ़ तत्त्व के आधार पर यह सब व्यवस्था की है!! जैनसिद्धान्तों से तो ऐसी हास्यास्पद बातों का कोई समर्थन नहीं होता! इस व्यवस्था के अनुसार पिता भाई के लिये सूतक की वह कोई मर्यादा भी कायम नहीं रहती जो ऊपर बतलाई गई है। युक्ति-वाद भी भट्टारकजी का बड़ा ही विलक्षण जान पड़ता है! समझ में नहीं आता एक सूतकी मनुष्य दान क्यों नहीं कर सकता? उसमें क्या दोष है? और उसके द्वारा दान किये हुए द्रव्य तथा सूखे अन्नादिक से भी उनका लेने वाला कोई कैसे अपवित्र हो जाता है? यदि अपवित्र हो ही जाता है तो फिर इस कल्पनामात्र से उसका उद्धार अथवा रक्षा कैसे हो सकती है कि दातार दो दिन के लिये सूतकी नहीं रहा? तब तो सूतक के बाद ही दानादिक किया जाना चाहिए। और यदि जरूरत के वक्त ऐसी कल्पनाएँ कर लेना भी जायेज (विधेय) है तो फिर एक श्रावक के लिये, जिसे नित्य पूजन, दान तथा स्वाध्यायादिक का नियम है, यही कल्पना क्यों न कर ली जाये कि उसे अपनी उन नित्यावश्यक क्रियाओं के करने में कोई सूतक नहीं लगता? इस कल्पना का उस कल्पना के साथ मेल भी है जो व्रतियों, दीक्षितों तथा ब्रह्मचारियों आदि को पिता के मरण के सिवाय और किसी का सूतक न लगने की बाबत की गई है।[६४]अतः

६४- यथा– व्रतिनां दीक्षितानां च याज्ञिकब्रह्मचारिणाम्। नैवाशौचं भवेत्तेषां पितुश्च मरणं विना॥१२२॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

भट्टारकजी का उक्त हेतुवाद कुछ भी युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता। वास्तव में उनका यह सब कथन प्रायः ब्राह्मणिक मन्तव्यों को लिये हुए है और कहीं कहीं हिन्दूधर्म से भी एक कदम आगे बढ़ा हुआ जान पड़ता है।[६५] जैनधर्म से उसका कोई खास सम्बन्ध नहीं है और न जैनियों में, आमतौर पर, नाल का काटना दो एक दिन के लिये रोका ही जाता है, बल्कि वह उसी दिन, जितना शीघ्र होता है काट दी जाती है और उसको काट देने के बाद ही दानादिक पुण्य कर्म किया जाता है।

(ग) तेरहवें अध्याय में भट्टारकजी एक व्यवस्था यह भी करते हैं कि यदि कोई पुत्र दूर देशान्तर में स्थित हो और उसे अपने पिता या माता के मरण का समाचार मिले तो उस समाचार को सुनने के दिन से ही उसे दस दिन का सूतक (पातक) लगेगा– चाहे वह समाचार उसने कई वर्ष बाद ही क्यों न सुना हो।[६६] यथा–

पितरौ चेत्मृतौ स्यातां दूरस्थोऽपि हि पुत्रकः।
श्रुत्वा तद्दिवमारभ्य पुत्राणां दशरात्रकं (दशाहं सूतकी भवेत्)॥७१॥

यह भी सूतक की कुछ कम विडम्बना नहीं है। उस पुत्र ने पिता का दाह कर्म किया नहीं, शव को स्पर्श नहीं, शव के पीछे श्मशान भूमि को वह गया नहीं और न पिता के मृत शरीर की दूषित वायु ही उस तक पहुँच सकी है परन्तु फिर भी इतने अर्से के बाद तथा हजारों मील की दूरी पर बैठा हुआ भी वह अपवित्र हो जाता है और दान पूजनादिक धर्मकृत्यों के योग्य नहीं रहता।!! यह कितनी हास्यास्पद व्यवस्था है इसे पाठक स्वयं सोच सकते हैं!!! क्या यह भी जैनधर्म की व्यवस्था है? छेदपिण्डादि शास्त्रों में तो जलाऽनल-प्रवेशादि द्वारा मरे हुओं की तरह परदेश में मरे हुओं का भी सूतक नहीं माना है। यथा–

वालत्तणसूरत्तणजलणादिपवेसदिक्खेहिं।
अणसणपरदेसेसु य मुदाण खलु सूतगं णत्थि॥३५३॥
छेदपिण्ड

लोइयसूरत्तविही जलाइपरदेसवालसण्णासे।
मरिदे खणो ण सोही वदसहिदे चेव सागारो॥८६॥
छेद शास्त्र

---

६५. हिन्दू धर्म में नाल कटने के बाद जन्म से पाँचवे छठे दिन भी पिता को दान देने तथा पूजन करने का अधिकारी बतलाया है और साथ ही यह प्रतिपादन किया है कि ब्राह्मणों को उस दान के लेने में कोई दोष नहीं। यथा– "जातकर्मणि दाने च नालच्छेदनात्पूर्वं पितुरधिकारः एवं पंचम षष्ठदशमदिने जन्म दादिपूजनेषु दाने चाधिकारः तत्र विप्राणां प्रति ग्रहेषि दोषो न।" आशौच निर्णय

६६. इसी तरह पर आपने पति पत्नी को भी एक दूसरे का मृत्यु समाचार सुनने पर दस दिन का सूतक बतलाया है। यथा– मातापित्रोर्यथाशौचं दशाहं क्रियते सुतैः। अनेकेऽब्देपि दम्पत्योस्तथैव स्यात्परस्परम्॥७४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

इससे उक्त व्यवस्था को जैनधर्म की व्यवस्था बतलाना और भी आपत्ति के योग्य हो जाता है। भट्टारकजी ने इस व्यवस्था को हिन्दूधर्म से लिया है, और वह उसके 'मरीचि' ऋषि की व्यवस्था है।[७७] उक्त श्लोक भी मरीचि ऋषि का वाक्य है और उसका अन्तिम चरण है 'दशाहं सूतकी भवेत्'। भट्टारकजी ने इस चरण को बदलकर उसकी जगह 'पुत्राणां दशरात्रकं' बनाया है और उनका यह परिवर्तन बहुत कुछ बेढंगा जान पड़ता है, जैसा कि पहिले ('अजैन ग्रन्थों से संग्रह' प्रकरण में) बतलाया जा चुका है।

(घ) इसी तेरहवें अध्याय में भट्टारकजी एक और भी अनोखी व्यवस्था करते हैं। अर्थात् लिखते हैं कि ''यदि कोई अपना कुटुम्बीजन दूर देशान्तर को गया हो, और उसका कोई समाचार पूर्वादि अवस्था क्रम से २८, १५ या १२ वर्ष तक सुनाई न पड़े तो इसके बाद उसका विधिपूर्वक प्रेतकर्म (मृतक संस्कार) करना चाहिए-सूतक (पातक) मनाना चाहिए और श्राद्ध करके छह वर्ष तक का प्रायश्चित्त लेना चाहिए। यदि प्रेतकार्य हो चुकने के बाद वह आ जाये तो उसे घी के घड़े तथा सर्व औषधियों के रस से नहलाना चाहिए, उसके सब संस्कार फिर से करके उसे यज्ञोपवीत देना चाहिए और यदि उसकी पूर्वपत्नी मौजूद हो तो उसके साथ उसका फिर से विवाह करना चाहिए।'' यथा–

दूरदेशं गते वार्ता दूरतः श्रूयते न चेत्।
यदि पूर्ववयस्कस्य यावत्स्यादष्टविंशतिः॥८०॥
तथा मध्यवयस्कस्य ह्याब्दा पंचदशैव तत्।
तथाऽपूर्ववयस्कस्य स्याद् द्वादशवत्सरम्॥८१॥
अत ऊर्ध्वं प्रेतकर्म कार्यं तस्य विधानतः।
श्राद्धं कृत्वा षडब्दं तु प्रायश्चित्तं स्वशक्तितः॥८२॥
प्रेतकार्ये कृते तस्य यदि चेत्पुनरागतः।
घृतकुम्भेन संस्नाप्य सर्वौषधिरिरण्यथ॥८३॥
संस्कारान्सकलान् कृत्वा मौञ्जीबन्धनमाचरेत्।
पूर्वपत्न्या सहैवास्य विवाहः कार्य एवहि॥८४॥

पाठकगण! देखिये, इस विडम्बना का भी कुछ ठिकाना है! बिना मरे ही मरना मना लिया गया!! और उसके मनाने की भी जरूरत समझी गई!!! यह विडम्बना पूर्व की विडम्बनाओं से भी बढ़ गई। इस पर अधिक लिखने की जरूरत नहीं। जैनधर्म से ऐसी बिना सिर पैर की विडम्बनात्मक व्यवस्थाओं का कोई सम्बन्ध नहीं है।

(ङ) सूतक मनाने के इतने धुनी भट्टारकजी आगे चलकर लिखते हैं–

---

७७. मनु आदि ऋषियों की व्यवस्था इससे भिन्न है और उसको जानने के लिये 'मनुस्मृति' आदि को देखना चाहिए। यहाँ पर एक वाक्य पराशरस्मृति का उद्धृत किया जाता है, जिसमें ऐसे अवसर पर सद्यःशौच की-तुरंत शुद्धि कर लेने की व्यवस्था की गई है। यथा– देशान्तरमृतः कश्चित्सगोत्रः श्रूयते यदि। न त्रिरात्रमहोरात्रं सद्यः स्नात्वा शुचिर्भवेत्॥३-१२॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

व्याधितस्य कदर्थस्य ऋणग्रस्तस्य सर्वदा।
क्रियाहीनस्य मूर्खस्य स्त्रीजितस्य विशेषतः॥११९॥
व्यसनासक्तचित्तस्य पराधीनस्य नित्यशः।
श्राद्धत्यागविहीनस्य षण्ढपाषण्डपापिनाम्॥१२०॥
पतितस्य च दुष्टस्य भस्मांतं सूतकं भवेत्।
यदि दग्धं शरीरं चेत्सूतकं तु दिनत्रयम्॥१२१॥

अर्थात्–जो लोग व्याधि से पीड़ित हों, कृपण हों, हमेशा कर्जदार रहते हों, क्रियाहीन हों, मूर्ख हों, सविशेष रूप से स्त्री के वशवर्ती हों, व्यसनासक्तचित्त हों, सदा पराधीन रहने वाले हों, श्राद्ध न करते हों, दान न देते हों, नपुंसक हों, पाषण्डी हों, पापी हों, पतित हों अथवा दुष्ट हों, उन सब का सूतक भस्मान्त होता है–अर्थात्, शरीर के भस्म हो जाने पर फिर सूतक नहीं रहता। सिर्फ उस मनुष्य को तीन दिन का सूतक लगता है, जिसने दग्धक्रिया की हो।

इस कथन से सूतक का मामला कितना उलट पलट हो जाता है। उसे बतलाने की जरूरत नहीं, सहृदय पाठक सहज ही में उसका अनुभव कर सकते हैं। मालूम नहीं भट्टारकजी का इसमें क्या रहस्य था! उनके अनुयायी सोनीजी भी उसे खोल नहीं सके और वैसे ही दूसरों पर अश्रद्धा का आक्षेप करने बैठ गये!! हमारी राय में तो इस कथन से सूतक की विडम्बना और भी बढ़ जाती है और उसकी कोई एक निर्दिष्ट अथवा स्पष्ट नीति नहीं रहती। लोक व्यवहार भी इस व्यवस्था के अनुकूल नहीं है। वस्तुतः यह कथन भी प्रायः हिन्दूधर्म का कथन है। इसके पहले दो पद्य 'अत्रि' ऋषि के वचन हैं और वे 'अत्रिस्मृति' में क्रमशः नं० १०० तथा १०१ पद दर्ज हैं, सिर्फ इतना भेद है कि वहाँ दूसरे पद्य का अन्तिम चरण 'भस्मान्तं सूतकं भवेत्' दिया है, जिसे भट्टारकजी ने अपने तीसरे पद्य का दूसरा चरण बनाया है और उसकी जगह पर 'षण्ढपाषण्डपापिनाम्' नाम का चरण रख दिया है!!

इसी तरह पर और भी कितने ही कथन अथवा विधि-विधान ऐसे पाये जाते हैं, जो सूतक मर्यादा की निःसार विषमतादि विषयक विडम्बनाओं को लिये हुए हैं और जिनसे सूतक की नीति निरापद नहीं रहती, जैसे विवाहिता पुत्री के पिता के घर पर मर जाने अथवा उसके वहाँ बच्चा पैदा होने पर सिर्फ तीन दिन के सूतक की व्यवस्था का दिया जाना! इत्यादि। और ये सब कथन भी अधिकांश में हिन्दूधर्म से लिए गए अथवा उसकी नीति का अनुसरण करके लिखे गये हैं।

यहाँ पर मैं अपने पाठकों को सिर्फ इतना और बतला देना चाहता हूँ कि भट्टारकजी ने उस हालत में भी सूतक अथवा किसी प्रकार के अशौच को न मानने की व्यवस्था की है जबकि यज्ञ (पूजन हवनादिक) तथा महान्यासादि कार्यों का प्रारम्भ कर दिया गया हो और बीच में कोई सूतक आ पड़े अथवा सूतक मानने से अपने बहुत से द्रव्य की हानि का प्रसंग उपस्थित हो। ऐसे सब अवसरों पर फौरन शुद्धि कर ली जाती है अथवा मान ली जाती है, ऐसा भट्टारकजी का कहना है। यथा–

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

- आ. बाल ब्रह्मचारी श्री सुमतप्रकाशजी

समारब्धेषु वा यज्ञमहान्यासादिकर्मसु।
बहुद्रव्यविनाशे तु सद्यः शौचं विधीयते॥१२४॥

परन्तु विवाह प्रकरण के अवसर पर आप अपने इस व्यवस्था नियम को भुला गये हैं। वहाँ विवाह यज्ञ का होम प्रारम्भ हो जाने पर जब यह मालूम होता है कि कन्या रजस्वला है तो आप तीन दिन के लिये विवाह को ही मुलतवी (स्थगित) कर देते हैं और चौथे दिन उसी अग्नि में फिर से होम करके कन्यादानादि शेष कार्यों को पूरा करने की व्यवस्था देते हैं![६८] आपको यह भी ख्याल नहीं रहा कि तीन दिन तक बारात के वहाँ और पड़े रहने पर बेटी वाले का कितना खर्च बढ़ जायेगा और साथ ही बारातियों को भी अपनी आर्थिक हानि के साथ साथ कितना कष्ट उठाना पड़ेगा!! यह भी तो बहु द्रव्यविनाश का ही प्रसंग था और साथ ही यज्ञ भी प्रारम्भ हो गया था जिसका कोई ख्याल नहीं रखा गया और न आप को यही ध्यान आया कि जिस ब्रह्मसूरि त्रिवर्णाचार से हम यह पद्य उठाकर रख रहे हैं उसमें इसके ठीक पूर्व ही ऐसे अवसरों के लिये भी सद्यःशौच की व्यवस्था की है–अर्थात् लिखा है कि उस वर तथा कन्या के लिये जिसका विवाहकार्य प्रारम्भ हो गया हो, उन लोगों के लिये जो होम श्राद्ध, महादान तथा तीर्थ यात्रा के कार्यों में प्रवर्त रहे हों और उन ब्रह्मचारियों के लिए जो प्रायश्चित्तादि नियमों का पालन कर रहे हों, अपने-अपने कार्यों को करते हुए किसी सूतक के उपस्थित हो जाने पर सद्यःशौच की व्यवस्था है।[६९] अस्तु, भट्टारकजी को इस विषय का ध्यान अथवा ख्याल रहा हो या न रहा हो वे भूल गये हों या भुला गये हों परन्तु इसमें संदेह नहीं कि ग्रंथ में उनके इस विधान से सूतक की नीति और भी ज्यादा अस्थिर हो जाती है और उससे सूतक की विडम्बना बढ़ जाती है अथवा यों कहिये कि उसकी मिट्टी खराब हो जाती है और कुछ मूल्य नहीं रहता। साथ ही, यह मालूम होने लगता है कि "वह अपनी वर्तमान स्थिति में महज काल्पनिक है, उसका मानना न मानना समय की जरूरत, लोकस्थिति अथवा अपनी परिस्थिति पर अवलम्बित है–लोक का वातावरण बदल जाने अथवा अपनी किसी खास जरूरत के खड़े हो जाने पर उसमें यथेच्छ परिवर्तन ही नहीं किया जा सकता बल्कि उसे साफ धता भी बतलाया जा सकता है, वास्तविक धर्म अथवा धार्मिक तत्त्वों के साथ उसका कोई खास सम्बन्ध नहीं है–उसको उस रूप में न मानते हुए भी पूजा, दान, तथा स्वाध्यायादिक धर्मकृत्यों का अनुष्ठान किया जा सकता है और उससे किसी अनिष्ठ फल की सम्भावना नहीं हो सकती"। चुनाँचे भरत चक्रवर्ती ने, पुत्रोत्पत्ति के कारण घर में सूतक होते हुए भी, भगवान् ऋषभदेव को केवलज्ञान उत्पन्न होने का शुभ समाचार पाकर उनके समवसरण में जाकर उनका साक्षात् पूजन किया था और वह पूजन भी अकेले अथवा चुपचाप नहीं किन्तु बड़ी धूम-धाम

६८. यथा– विवाहहोमे प्रक्रान्ते कन्या यदि रजस्वला। त्रिरात्रं दम्पती स्यातां पृथक्शय्यासनाशनौ ॥१०६॥
चतुर्थेऽहनि संस्नाता तस्मिन्नग्नौ यथाविधि। विवाहहोमं कुर्यातु कन्यादानादिकं तथा ॥१०७॥

६९. यथा– उपक्रान्तविवाहस्य वरस्यापि स्त्रियस्तथा। होमश्राद्धमहादानतीर्थयात्राप्रवर्तिनाम् ॥८-७९॥
प्रायश्चित्तादिनियमवर्तिनां ब्रह्मचारिणाम्। इत्येषां स्वस्वकृत्येषु सद्यः शौचं निरूपितम् ॥ ८०॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

के साथ अपने भाइयों, स्त्रियों तथा पुरजनों को साथ लेकर किया था। उन्हें ऐसा करने से कोई पाप नहीं लगा और न उसके कारण कोई अनिष्ट ही संघटित हुआ। प्रत्युत इसके, शास्त्र में-भगविज्जनसेन प्रणीत आदिपुराण में उनके इस सद्विचार तथा पुण्योपार्जन के कार्य की प्रशंसा ही की गई है जो उन्होंने पुत्रोत्पत्ति के उत्सव को भी गौण करके पहले भगवान् का पूजन किया। भरतजी के मस्तक में उस वक्त इस प्रकार की किसी कल्पना का उदय तक भी नहीं हुआ कि ''पुत्रजन्म के योगमात्र से हम सब कुटुम्बीजन, सूतक गृह में प्रवेश न करते हुए भी, अपवित्र हो गये हैं, कुछ दिन तक बलात् अपवित्र ही रहेंगे और इसलिये हमें भगवान् का पूजन न करना चाहिए,'' बल्कि वे कुछ देर तक सिर्फ इतना ही सोचते रहे कि एक साथ उपस्थित हुए इन कार्यों में से पहले कौन-सा कार्य करना चाहिए और अंत को उन्होंने यही निश्चय किया कि यह सब पुत्रोत्पत्ति आदि शुभ फल धर्म का ही फल है, इसलिये सबसे पहिले देवपूजा रूप धर्मकार्य ही करना चाहिए जो श्रेयानुबंधी (कल्याणकारी) तथा महाफल का दाता है। और तदनुसार ही उन्होंने, सूतकावस्था में, पहले भगवान् का पूजन किया।[७०] भरतजी यह भी जानते थे कि उनके भगवान् वीतराग हैं, परम पवित्र और पतितपावन हैं, यदि कोई शरीर से अपवित्र मनुष्य उनकी उपासना करता है तो वे उससे नाखुश (अप्रसन्न) नहीं होते और न उसके शरीर की छाया पड़ जाने अथवा वायु लग जाने से अपवित्र ही हो जाते हैं, बल्कि वह मनुष्य ही उनके पवित्र गुणों की स्मृति के योग से स्वयं पवित्र हो जाता है।[७१] इससे भरतजी को अपनी सूतकावस्था की कुछ चिंता भी नहीं थी।

मालूम होता है ऐसे ही कुछ कारणों से जैनधर्म में सूतकाचरण को कोई विशेष महत्त्व नहीं दिया गया। उसका श्रावकों की उन ५३ क्रियाओं में नाम तक भी नहीं है जिनका आदिपुराण में विस्तार के साथ वर्णन किया गया है और जिन्हें 'सम्यक् क्रियाएँ' लिखा है, बल्कि भगवज्जिनसेन ने 'आधानादिश्मशानान्त' नाम से प्रसिद्ध होने वाली दूसरे लोगों की उन विभिन्न क्रियाओं को जिनमें 'सूतक' भी शामिल है 'मिथ्या क्रियाएँ' बतलाया है।[७२] इससे जैनियों के लिये सूतक का कितना महत्त्व है यह और भी स्पष्ट हो जाता है। इसके सिवाय, प्राचीन साहित्य का जहाँ तक भी अनुशीलन किया जाता है उससे यही पता चलता है कि बहुत प्राचीन समय अथवा जैनियों के अभ्युदय काल में सूतक को कभी इतनी महत्ता प्राप्त नहीं थी और न वह ऐसी विडम्बना को ही लिये हुए था जैसी कि भट्टारकजी के इस ग्रन्थ में पाई जाती है। भट्टारकजी ने किसी देश, काल अथवा सम्प्रदाय में प्रचलित सूतक के नियमों का जो यह बेढंगा संग्रह करके उसे शास्त्र का रूप दिया है और सब जैनियों

७०. देखो उक्त आदिपुराण का २४वाँ पर्व।

७१. नित्य की 'देवपूजा' में भी ऐसा ही भाव व्यक्त किया गया है और उस अपवित्र मनुष्य को तब बाह्याभ्यन्तर दोनों प्रकार से पवित्र माना है। यथा-

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा। यः स्मरेत्परमात्मानं स बाह्याभ्यन्तरे शुचिः॥

७२. देखो इसी परीक्षा लेख का 'प्रतिष्ठादिविरोध' नाम का प्रकरण।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

पर उसके अनुकूल आचरण की जिम्मेदारी का भार लादा है वह किसी तरह पर भी समुचित प्रतीत नहीं होता। जैनियों को इस विषय में अपनी बुद्धि से काम लेना चाहिए और केवल प्रवाह में नहीं बहना चाहिए, उन्हें जैनदृष्टि से सूतक के तत्त्व को समझते हुए उसके किसी नियम उपनियम का पालन उस हद तक ही करना चाहिए जहाँ तक कि लोक-व्यवहार में ग्लानि मेटने अथवा शुचिता[७३] सम्पादन करने के साथ उसका सम्बन्ध है और अपने सिद्धान्तों तथा व्रताचरण में कोई बाधा नहीं आती। बहुधा परस्पर के खान-पान तथा बिरादरी के लेन देन तक ही उसे सीमित रखना चाहिए। धर्म पर उसका आतंक न जमना चाहिए, किंतु ऐसे अवसरों पर भरतजी की तरह अपने योग्य धर्माचरण को बराबर करते रहना चाहिए। और यदि कहीं का वातावरण, अज्ञान अथवा संसर्गदोष से या ऐसे ग्रन्थों के उपदेश से दूषित हो रहा हो, सूतक पातक की पद्धति बिगड़ी हुई हो, तो उसे युक्ति पूर्वक सुधारने का यत्न करना चाहिए।

तेरहवें अध्याय में मृतकसंस्कारादि विषयक और भी कितना ही कथन ऐसा है जो दूसरों से उधार लेकर रखा गया है और जैनदृष्टि से उचित प्रतीत नहीं होता। वह सब भी मान्य किये जाने के योग्य नहीं है। यहाँ पर विस्तारभय से उसके विचार को छोड़ा जाता है।

मैं समझता हूँ ग्रन्थ पर से सूतक की विडम्बना का दिग्दर्शन कराने के लिये उसका इतना ही परिचय तथा विवेचन काफी है। सहृदय पाठक इस पर से बहुत कुछ अनुभव कर सकते हैं।

पिप्पलादि-पूजन

(२१) नवमें अध्याय में, यज्ञोपवीत संस्कार का वर्णन करते हुए भट्टारकजी ने पीपल वृक्ष के पूजने का भी विधान किया है। आपके इस विधानानुसार "संस्कार से चौथे दिन पीपल पूजने के लिये जाना चाहिए। पीपल का वह वृक्ष पवित्र स्थान में खड़ा हो, ऊँचा हो, छेददाहादि से रहित हो तथा मनोज्ञ हो, और उसकी पूजा इस तरह की जाये कि उसके स्कन्ध देश को दर्भ तथा पुष्पादिक की मालाओं और हल्दी में रंगे हुए सूत के धागों से अलंकृत किया जाये-लपेटा अथवा सजाया जाये, मूल को जल से सींचा जाये और वृक्ष के पूर्व की ओर एक चबूतरे पर अग्निकुंड बनाकर उसमें नौ नौ समिधाओं तथा घृतादिक से होम किया जाये, इसके बाद उस वृक्ष से, जिसे सर्व मंगलों का हेतु बतलाया है यह प्रार्थना की जाये कि हे पिप्पल वृक्ष! मुझे आपकी तरह पवित्रता, यज्ञयोग्यता और बोधित्वादिगुणों की प्राप्ति होवे और आप मेरे जैसे चिन्हों के (मनुष्याकार के) धारक होवें, प्रार्थना के अनंतर उस वृक्ष तथा अग्नि की तीन प्रदक्षिणाएँ देकर खुशी-खुशी अपने घर को जाना चाहिए और वहीं भोजन के पश्चात् सबको संतुष्ट करके रहना चाहिए। साथ ही उस संस्कारित व्यक्ति को पीपल पूजने की यह क्रिया हर महीने इसी तरह होमादिक के साथ करते रहना चाहिए और खासकर श्रावण

७३. यह शुचिता प्रायः भोजनपान की शुचिता है अथवा भोजनपान की शुद्धि को सिद्ध करना ही सूतक पातक सम्बन्धी वर्जन का मुख्य उद्देश्य है, ऐसा लाटीसंहिता के निम्न वाक्य से ध्वनित होता है- सूतके पातके चापि यथोक्तं जैनशासने। एषणाशुद्धिसिद्ध्यर्थं वर्जयेच्छ्रावकाग्रणीः॥५-२५६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY